[2021]3 एस.सी.आर. 68

सिकंदराबाद कैंटनमेंट बोर्ड

बनाम

मेसर्स. बी. रामचंद्रैया एण्ड सन्स

(सिविल अपील क्रमांक 900–902/2021)

15 मार्च, 2021

[आर.एफ. नरीमन व बी.आर. गवई, न्यायमूर्तिगण]

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 11–परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 9 एवं अनुच्छेद 137 – अपीलार्थी ने वार्षिक अनुबंध की अवधि के लिए निविदा आमंत्रित करने की सूचना जारी की – प्रतिवादी के साथ तीन समझौते किए गए – समझौतों में मध्यस्थता खंड था – कार्य आदेश जारी किए गए – इसके बाद, अपीलार्थी द्वारा अंतिम अनुबंध प्रमाण पत्र जारी किए गए और विचाराधीन कार्यों का अंतिम भुगतान प्रतिवादी द्वारा प्राप्त किया गया – तब प्रतिवादी ने सामग्री, श्रम और ईंधन की कीमतों में भिन्नता के कारण प्रतिपूर्ति की मांग करना शुरू कर दिया – पत्र दिनांक 07.11.2006 द्वारा, प्रतिवादी ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया – प्रतिवादी ने एक और पत्र दिनांक 13.01.2007 जारी किया और कहा कि उसके पास अनुबंध को रद्द करने और 30 दिनों के भीतर एक मध्यस्थ नियुक्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था – इसमें कोई विवाद नहीं है कि 30 दिन की अवधि 12.02.2007 से समाप्त हो गई थी, हालांकि, प्रतिवादी ने अपने दावे को दोहराते हुए 2007–2009 में पत्र लिखना जारी रखा – अंत में, प्रतिवादी ने दिनांक 30.01.2010 एक कानूनी नोटिस जारी किया और 'स्पष्टीकरण सूचना' दिनांक 20.03.2010 – अपीलार्थी ने पत्र दिनांक 10.11.2010 के द्वारा प्रतिपूर्ति के दावे को खारिज कर दिया और कहा कि उन्होंने कार्य आदेश के लिए अंतिम भुगतान कर दिया है – दिनांक 06.11.2013 को, प्रतिवादी ने अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन दायर किया – उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने आवेदन की अनुमति दी और एक मध्यस्थ नियुक्त किया गया – अपील पर, अभिनिर्धारित किया गयाः यह स्पष्ट है कि मध्यस्थता की मांग पत्र दिनांक 07.11.2006 के द्वारा की गई थी – इसके बाद, एक अन्य पत्र दिनांक 13.01.2007 के द्वारा अपीलार्थी को सूचित किया कि नियुक्ति 30 दिनों के भीतर करनी होगी – समय 12.02.2007 से शुरू होना और शुरू हो जाता है – एक बार समय शुरू होने के बाद, धारा 9 परिसीमा अधिनियम के जनादेश का पालन करते हुए, अपीलार्थी द्वारा कोई भी अंतिम

अस्वीकृति (पत्र दिनांक 10.11.2010) उस सीमा अवधि को कोई नई शुरुआत नहीं देगा जो पहले से ही चल रही थी – यह मामला होने पर, उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह कहते हुए गलती की थी कि चूंकि आवेदन 06.11.2013 को दायर किए गए थे, वे मामले 10.11.2010 से शुरू होने वाली तीन साल की सीमा अवधि के दायरे में थे – यहां तक कि, प्रतिवादी का दावा भी प्रथम दृष्ट्या कालबाधित था – इस प्रकार, उच्च न्यायालय के फैसले को निरस्त किया जाता है।

अपीलों को स्वीकृति देते हुए, न्यायालय ने

यह अभिनिर्धारित कियाः 1. सीमा एक अधिकार क्षेत्र का मुद्दा नहीं है, बल्कि एक स्वीकार्यता का मुद्दा है। जहाँ तक मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदनों पर परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 की प्रयोज्यता का सवाल है, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में मध्यस्थता की मांग पत्र दिनांक 07.11.2006 द्वारा की गई थी। इस मांग को एक पत्र दिनांक 13.01.2007 के द्वारा दोहराया गया था, जिसमें स्वयं अपीलार्थी को सूचित किया गया था कि मध्यस्थ की नियुक्ति 30 के भीतर की जानी चाहिए। हाल ही में, इसलिए, इस मामले के तथ्यों पर, समय 12.02.2007 से चलना शुरू हुआ। अपीलकर्ता का संक्षिप्त पत्र दिनांक 23.01.2007, जिसमें कहा गया था कि मामला विचाराधीन था, 30 दिन की अवधि के भीतर था। 12.02.2007 को और उसके बाद से, जब कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया गया था, मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए कार्रवाई का कारण प्रतिवादी को दिया गया और उस दिन से समय चलना शुरू हुआ। जाहिर है, एक बार समय चलना शुरू हो गया है, तो अपीलकर्ता द्वारा अपने पत्र दिनांक 10.11.2010 द्वारा कोई भी अंतिम अस्वीकृति उस सीमा अवधि को कोई नई शुरुआत नहीं देगी जो कि परिसीमा अधिनियम की धारा 9 के आदेश के बाद पहले ही चलनी शुरू हो चुकी है। यह मामला होने पर, उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह कहते हुए गलती की कि चूंकि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन 06.11.2013 पर दायर किए गए थे, वे 10.11.2020 से शुरू होने वाली तीन साल की सीमा अवधि के भीतर थे। इस आधार पर, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन, निराशाजनक रूप से समय–बाधित होने के कारण, उच्च न्यायालय द्वारा कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता था। [पैरा– 19, 20] [83–ए; 85 जी–एच; 86–ए–डी]

2. अन्यथा भी, प्रतिवादी द्वारा किया गया दावा भी प्रथम दृष्टया कालबाधित था। यह निर्विवाद है कि प्रतिवादी को अंतिम भुगतान मार्च 2003 के अंत तक प्राप्त हुआ था। इसके अलावा, यह मानते हुए भी कि कीमत में भिन्नता के कारण मांग की जा सकती थी, ऐसी मांग 08.09.2003 को की गई थी । इसके बाद प्रतिवादी द्वारा बार–बार पत्र लिखे गए, जो दिनांक 30.01.2010 के कानूनी नोटिस में समाप्त हुए। कानूनी नोटिस के जवाब दिनांक 16.02.2010 में, यह स्पष्ट किया गया था कि ऐसी मांगों को अस्वीकार कर दिया गया था। यहां तक कि फरवरी 2013 तक तीन साल की अवधि बीत जाने के बाद, गुणदोष पर परिसीमा के लिए शुरुआती बिंदु के रूप

में 16.02.2010 को भी लिया जा रहा है, गुणदोष के आधार पर किया गया दावा भी निराशाजनक रूप से समय–बाधित है। इन सभी कारणों से, अपीलें की स्वीकृत की जाती है और उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 20.08.2019 को निरस्त किया जाता है। [पैरा 21, 22] [86–ई–एफ]

जियो मिलर एण्ड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड बनाम राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड **(2020)14 एस.सी.सी. 643: [2019] 11 एससीआर 1108**;

विद्या द्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, **(2021)2 एससीसी** 1; भारत संचार निगम लिमिटेड व अन्य बनाम मेसर्स नॉर्टेल नेटवर्क्स इंडिया प्रा. लिमिटेड 2021(4) स्केल 11 – **पर निर्भर।**

दीपदर्शन बिल्डर्स प्रा. लिमिटेड बनाम सरोज, (2019)1 **ए.आई.आर. बाम्बे. आर 249 – संदर्भित।**

संदर्भित विधि मामला

[2019]11 एससीआर 1108	पर भरोसा	पैरा 13
(2021)2 एससीसी 1	पर भरोसा	पैरा 16
2021(4) स्केल 11	पर भरोसा	पैरा 19

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारिताः सिविल अपील क्रमांक 900–902/2021.

मध्यस्थता आवेदन क्रमांक 154/2013 में हैदराबाद तेलंगाना राज्य के उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 20.08.2019 से

अपीलार्थी द्वारा पी.एस. नरसिम्हा, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्रीमती वेरिटास लेजिस ।

प्रतिवादीगण द्वारा नितिन पावुलुरी, नितिन चौधरी, जी.पी. कैप्टन. करण सिंह भाटी, जयदीप सिंह, मिस.चित्रांगदा राष्ट्रवरा, मानवेंद्र सिंह राठौर, दशरथ सिंह, अधिवक्तागण।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एफ. नरीमन, के द्वारा दिया गया था।

1. अनुतोष दी गई।

2. ये अपीलें धारा 11 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 [मध्यस्थता अधिनियम] के तहत आवेदनों से उत्पन्न होती हैं। उस पर 02.09.2000, हमारे समक्ष अपीलार्थी, सिकंदराबाद छावनी बोर्ड [अपीलार्थी] ने एक वार्षिक अवधि के अनुबंध के लिए निविदा ["N.I.T."] आमंत्रित करने के लिए एक नोटिस जारी किया:

1. मुख्य सड़कों की मरम्मत (हॉट मिक्स प्लांट और पेवर के साथ केंद्रीकृत पुनर्सतहीकरण);

2. मुख्य सड़कों की मरम्मत (केंद्रीकृत हॉट मिक्स प्लांट और पेवर के साथ सड़कों का चौड़ीकरण);

3. आंतरिक सड़कों की मरम्मत (हॉट मिक्स पेवर और प्लांट के साथ पुनर्सतहीकरण)।

3. उपरोक्त एन.आई.टी. के अनुसार, प्रतिवादी के साथ तीन समझौते किए गए, मेसर्स रामचंद्रैया एंड संस (प्रतिवादी), पहला दिनांक 23.09.2000 और अन्य दो दिनांक 17.09.2001. उपरोक्त समझौते का प्रत्येक खंड 5, जो समान शर्तों में है, महत्वपूर्ण है और इस प्रकार है:

> "5. अंतिम बिलः ठेकेदार काम के पूरा होने तथा सौंपने की तारीख से 08 दिनों के भीतर पूरा और पूर्ण माप के साथ काम का अपना अंतिम बिल प्रस्तुत करेगा, जिसमें प्राप्त आंशिक भुगतान और बोर्ड द्वारा आपूर्ति किए गए भंडार, पानी की लागत और अनुबंध के तहत उसके द्वारा प्राप्त किसी भी अन्य वस्तु के कारण कटौती दर्शाई जाएगी। ठेकेदार अपने बिल के साथ एक दावा न करने का प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत करेगा जिसमें कहा गया हो कि अनुबंध के तहत उसके द्वारा किए गए और पूरे किए गए काम के कारण छावनी बोर्ड से कोई दावा नहीं है और इसके बाद कोई भी दावा स्वीकार्य नहीं होगा। विधेयक में एक बयान भी होगा जिसमें दिखाया जाएगा कि ठेकेदार द्वारा खपत किए गए सीमेंट का औचित्य।

4. उपरोक्त समझौते के प्रत्येक के खंड 17 में निहित मध्यस्थता खंड इस प्रकार है:

> "**17.अनुबंध को नियंत्रित करने वाला कानून**: अनुबंध भारतीय कानून द्वारा शासित होगा। इस अनुबंध के पक्षों के बीच या अनुबंध से संबंधित सभी विवादों को छोड़कर, जिनके लिए स्वीकार करने वाले अधिकारी का निर्णय अंतिम और निर्णायक है, किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को दिए गए लिखित नोटिस के बाद अध्यक्ष छावनी बोर्ड सिकंदराबाद द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को भेजा जाएगा। मध्यस्थ का निर्णय अंतिम, निर्णायक और अनुबंध के दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होगा।"

5. उपरोक्त कार्यों के संबंध में कार्य आदेश जारी किए गए थे। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि प्रतिवादी निर्धारित अवधि के भीतर काम पूरा करने में विफल रहा है। लेकिन दिनांक 05.10.2002 की अपनी बैठक में, इसने प्रतिवादी से एक वचन पत्र पर 31.12.2002 तक समय का विस्तार देने का निर्णय लिया कि अपीलकर्ता अनुबंधों में प्रदान किए गए अनुसार और मामले में अपीलकर्ता द्वारा तय किए गए अनुसार शेष कार्य 31.12.2002 तक पूर्ण नहीं किये जाने पर जुर्माना लगाने के लिए स्वतंत्र होगा। प्रतिवादी ने 30.10.2002 को आवश्यक उपक्रम प्रस्तुत किया।

6. यह विवादित नहीं है कि अपीलकर्ता द्वारा 18.02.2003 और 26.03.2003 को जारी किए गए अंतिम अनुबंध प्रमाणपत्रों के माध्यम से, प्रश्नगत कार्यों के संबंध में प्रतिवादी को अंतिम भुगतान प्राप्त हुआ था। लगभग छह महीने के अंतराल के बाद, प्रतिवादी ने सामग्री, श्रम और ईंधन की कीमतों में भिन्नता के कारण प्रतिपूर्ति की मांग करना शुरू कर दिया। ये मांगें दिनांक 08.09.2003, 24.07.2004 और 12.10.2004 के पत्रों के माध्यम से की गई थीं।

7. दो साल से अधिक की चुप्पी के बाद, प्रतिवादी ने दिनांक 07.11.2006 को एक पत्र जारी किया जिसके द्वारा प्रतिवादी ने तीनों अनुबंधों में मूल्य भिन्नता के कारण प्रतिपूर्ति के दावे के संबंध में एक मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध किया। यह विशेष रूप से कहा गया था कि पत्र प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर अपीलकर्ता द्वारा आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। अपीलकर्ता से कोई जवाब नहीं मिलने पर, प्रतिवादी ने 13.01.2007 को एक और पत्र जारी किया, जिसमें उसने संविदात्मक दायित्वों के मौलिक उल्लंघन की बात कही और फिर कहा कि अनुबंधों में प्रदान किए गए मध्यस्थता खंड के अनुरूप उसके पास अनुबंधों को रद्द करने और 30 दिनों के भीतर एक मध्यस्थ नियुक्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

8. इस पत्र के लिए, अपीलार्थी से 23.01.2007 पर एक संक्षिप्त जवाब प्राप्त हुआ, जिसमें कहा गया था कि उनके पत्र में निर्दिष्ट मामला विचाराधीन है। यह विवादित नहीं है कि 30–दिन की अवधि, जिसका उल्लेख दिनांकित 13.01.2007 पत्र में किया गया है, 12.02.2007 से समाप्त हो गई थी। इस स्थिति के बावजूद, प्रतिवादी अपने दावे को दोहराते हुए वर्षों 2007–2009 के बीच लंबे अंतराल पर पत्र लिखते रहे। अंत में, एक कानूनी सूचना दिनांक 30.01.2010 द्वारा, प्रतिवादी ने विशेष रूप से कहाः

> "अनुबंधों के संक्षिप्त विवरण को दोहराने के लिए, तीनों कार्यों को 31.03.2002 में पूरा कर लिया गया है और अंतिम बिल आपत्ति के साथ प्राप्त हुआ।

यह इंगित करना भी समीचीन है कि मध्यस्थता की कार्यवाही पहले ही 07.11.2006 (मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 का के इरादे के भीतर) से शुरू हो चुकी है।

यदि माननीय नियुक्ति प्राधिकारी मध्यस्थ नियुक्त करने के अपने अधिकारों का त्याग करना जारी रखता है, तो हमारे पास एकमात्र उपाय बचता है कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग की जाए (मध्यस्थता खंड को लागू करने के लिए) जैसा कि समझौते द्वारा तय किया गया है (चूंकि समझौते में कानून की अदालत को छोड़कर विवादों के निपटारे के साधन के रूप में मध्यस्थता की परिकल्पना की गई है)"।

9. इस कानूनी नोटिस दिनांक 30.01.2010 पर, अपीलार्थी ने दिनांक 16.02.2010 को बयान करते हुए जवाब दियाः

> "1. ..... उन अनुबंधों को देने के बाद, कार्य आदेश जारी किए गए हैं और कार्यों के कुछ हिस्से को आपके मुवक्किल द्वारा निर्धारित समय के भीतर निष्पादित किया गया था और निष्पादित कार्यों के बिल वर्ष 2002–2003 में अंतिम बिल जमा करने पर मंजूरी दे दी गई थी और आपके मुवक्किल ने मेरे मुवक्किल द्वारा और उनके बीच किए गए अनुबंध के खंड 5 का पालन करके भुगतान प्राप्त किया है। चूंकि निष्पादित कार्यों के लिए अंतिम भुगतान किया गया था, इसलिए आपके द्वारा अनुरोध की गई प्रतियां उपलब्ध नहीं हो सकती हैं क्योंकि अनुबंध के समापन के बाद 8 साल का समय बीत चुका है।
>
> 2. अनुबंध के समापन के बाद और अंतिम भुगतान की प्राप्ति के बाद, आपके मुवक्किल ने आपके नोटिस में उल्लिखित पत्राचार करना शुरू कर दिया है, जो जवाब के तहत वर्तमान नोटिस में परिणत हुआ और कीमतों में भिन्नता पर प्रतिपूर्ति के लिए अतिरिक्त दावा मांगा, हालांकि इसमें ऐसा कोई खंड नहीं है। कीमतों में भिन्नता पर राशि का दावा करने के लिए उपरोक्त संदर्भित कार्यों के निष्पादन के लिए समझौता किया गया। इसके अलावा अनुबंध की अवधि अनुबंध देने की तारीख से एक वर्ष है और अनुबंध की अवधि क्रमशः 2001 और 2002 तक समाप्त हो गई थी। जबकि आपके मुवक्किल को 30.01.2010 को जवाब के तहत अंतिम नोटिस जारी किया गया है और एक मध्यस्थ की नियुक्ति पर जोर दिया गया है, हालांकि आपके मुवक्किल और मेरे मुवक्किल के बीच कोई विवाद नहीं है और इसके अलावा आपके मुवक्किल का दावा परिसीमा के कानून के तहत वर्जित है।
>
> "4. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में आपके नोटिस में दिए गए उत्तर में यह तर्क दिया गया है कि आपका मुवक्किल विवाद के निपटारे के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति पर जोर दे रहा है और नियुक्ति प्राधिकारी ने मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की है और मध्यस्थता की कार्यवाही 07.11.2006 से शुरू हो चुकी है और वह यदि माननीय नियुक्ति प्राधिकारी मध्यस्थ नियुक्त करने के अपने अधिकार का त्याग करना जारी रखता है, तो आपके मुवक्किल के पास आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग करने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता है, यह अत्यधिक आपत्तिजनक और अस्थिर

है और आपका वर्ष 2002 में अनुबंध समाप्त होने के बाद मुवक्किल के पास विवाद उठाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। मध्यस्थ नियुक्त करने के आपके मुवक्किल के दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि आपके मुवक्किल और मेरे मुवक्किल के बीच कोई मध्यस्थ मुद्दा नहीं चल रहा है और इसके अलावा आपके मुवक्किल द्वारा उठाया गया दावा परिसीमा कानून के तहत निराशाजनक रूप से वर्जित है और यह कहना गलत है कि आपको आपत्ति के साथ भुगतान प्राप्त हुआ है।

5. मेरा मुवक्किल आगे दोहराता है कि उपरोक्त संदर्भित तीनो अनुबंध वर्ष 2000–2001 में एक वर्ष की अवधि के लिए अनुबंध दिए गए थे और चूंकि आपका मुवक्किल निर्धारित अवधि के भीतर उसे सौंपे गए कार्यों को पूरा नहीं कर सका था, इसलिए उसके अनुरोध पर समय को 31.12.2002 तक बढ़ा दिया गया था और उस समय तक वह केवल लगभग Rs.75 लाख का काम पूरा कर सकता है और आपके मुवक्किल का विचाराधीन कार्यों के संबंध में शेष राशि के लिए कार्य आदेश जारी करने का अनुरोध ए.पी. के माननीय उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था इसलिए, प्रतिपूर्ति का सवाल आपके मुवक्किल द्वारा दावा की गई कीमतों में भिन्नता उत्पन्न नहीं होती है और वह ऐसे दावों का हकदार नहीं है।

6. मेरा मुवक्किल आगे दोहराता है कि समझौते के खंड 5 के अनुसार, अंतिम बिल राशि कोई दावा नही प्रमाणपत्र जमा करने पर जारी की जाएगी, जिसमें कहा जाएगा कि ठेकेदार द्वारा किए गए और पूरे किए गए कार्यों के कारण कैंटोनमेंट बोर्ड में कोई दावा नहीं है और उसके बाद कोई दावा नहीं किया जाएगा। इस खंड के अनुसार आपके मुवक्किल को अंतिम बिल राशि प्राप्त हो गई है, इसलिए मध्यस्थ द्वारा निर्णय किए जाने के लिए कोई मुद्दा नहीं है। जैसा कि आपके मुवक्किल और मेरे मुवक्किल द्वारा किए गए अनुबंध में ऊपर बताया गया है, ऐसा कोई विशिष्ट खंड नहीं है जिसके तहत आपका मुवक्किल कीमतों में भिन्नता पर प्रतिपूर्ति का हकदार है। इसलिए इसे किसी मध्यस्थ द्वारा निर्णय लिए जाने वाला मुद्दा नहीं बनाया जा सकता है।"

10. उपरोक्त जवाब नोटिस के प्रत्युत्तर में, प्रतिवादी ने 20.03.2010 को "स्पष्टीकरण नोटिस" जारी किया, जिसके बाद 30.09.2010 को तीन पत्र जारी किए गए, जिसमें मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए पहले के अनुरोधों को दोहराया गया। इसे अपीलकर्ता ने दिनांक 10.11.2010 के एक पत्र के माध्यम से खारिज कर दिया था, पत्र में प्रतिवादी को सूचित किया गया था कि सिकंदराबाद छावनी बोर्ड के अध्यक्ष ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन को खारिज कर दिया था क्योंकि सभी भुगतान किए जा चुके थे और कुछ भी लंबित नहीं था।

11. तीन साल के लंबे अंतराल के बाद, प्रतिवादी ने दिनांक 06.11.2013 को धारा 11 मध्यस्थता अधिनियम के तहत आवेदन दायर किए। तेलंगाना राज्य के उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने

दिनांक 20.08.2019 के आलोच्य निर्णय के अनुसार, उच्च न्यायालय तेलंगाना राज्य के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि धारा 11 के आवेदन समय के भीतर थे क्योंकि वे एक मध्यस्थ नियुक्ति के अनुरोध को खारिज करने वाले पत्र दिनांक 10.11.2010 से तीन साल के भीतर दायर किए गए थे। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी दर्ज कियाः

> "39. प्रतिवादी की बोर्ड मीटिंग के प्रतिवादी द्वारा दायर दिनांक 07.11.2003 की कार्यवाही में निस्संदेह 14,84,000/– के अलावा 14,06,580/– का भुगतान दर्शाया गया है, लेकिन यह भुगतान खंड 2.2.46 के तहत प्रतिपूर्ति के दावे के आवेदक द्वारा दावा की गई कीमतों में भिन्नता कारण नहीं है। यह काम की विभिन्न वस्तुओं की वास्तविक मात्रा के लिए स्वीकृत भुगतान है जो बढ़ गया था, और इसलिए इसे खंड 2.2.46 के तहत आवेदक के दावे के प्रति भुगतान के रूप में प्रथम दृष्टया नहीं माना जा सकता है।"
>
> "42. खंड 2.2.46 के तहत आवेदक द्वारा किए गए दावों के संबंध में 08.09.2003 के बाद से प्रतिवादी की लंबी चुप्पी, बिना किसी जोरदार अस्वीकृति के, प्रथम दृष्टया दिखाती है कि पार्टियों के बीच उस संबंध में एक जीवंत मुद्दा प्रतीत होता है।"

12. परिणामस्वरूप, धारा 11 के आवेदनों को अनुमति दी गई और तीन समझौतों से उत्पन्न पक्षों के बीच विवादों का निपटारा करने के लिए श्री वाई.वी. रामकृष्ण (सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश) को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था। किए गए दावों की परिसीमा के प्रश्न को मध्यस्थ द्वारा विचार करने और निर्णय लेने के लिए खुला छोड़ दिया गया था।

13. श्री पी.एस. नरसिम्हा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत किया गया कि जिस तारीख को सिकंदराबाद छावनी बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध प्राप्त किया गया था, वह 23.01.2007 थी, जिसके परिणामस्वरूप, यह वह तारीख है जिस पर परिसीमा अधिनियम, 1963 ["परिसीमा अधिनियम"] के अनुच्छेद 137 के तहत सीमा अवधि शुरु है, जहां तक मध्यस्थता अधिनियम की धारा– 11(6) के तहत एक आवेदन संबंधित है। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने **दीपदर्शन बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सरोज, (2019)1 ए.आई.आर.बॉम आर 249,** में बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक फैसले पर साथ ही इस न्यायालय के हालिया निर्णय **जियो मिलर एण्ड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड बनाम राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड, (2020)14 एससीसी 643** में भरोसा किया। फिर उन्होंने तर्क दिया कि जहां तक गुण–दोष पर कार्रवाई के कारण का संबंध है, यह बहुत पहले 08.09.2003 पर उत्पन्न हुआ था, जब प्रतिवादी ने पहली बार विवाद के संबंध में दावा किया था। एक बार जब समय चलना शुरू हो जाता है, तो बाद के पत्र लिखकर परिसीमा

को बढ़ाया नहीं जा सकता है। उन्होंने इस न्यायालय के हालिया फैसले– **विद्या द्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, (2021)2 एस.सी.सी. 1,** में पर भी भरोसा किया और कहा गया है कि यह मामला फैसले के पैराग्राफ 148 के तहत आता है, जिसमें दावा प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबंधित और मृत था और कोई विवाद नहीं था।

14. जवाब में, प्रतिवादी की ओर से विद्वान वकील श्री नितिन चौधरी पावुलुरी ने तर्क दिया कि मध्यस्थ की नियुक्ति के अनुरोध को अपीलार्थी द्वारा पहली बार 10.11.2010 पर खारिज कर दिया गया था, और इस प्रकार, 10.11.2010 वह तारीख होगी जिस पर कार्रवाई का कारण उत्पन्न होगा। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मध्यस्थ नियुक्त करने के अनुरोध को अस्वीकार करना निष्पादन करने में विफलता का गठन करता है अनुबंध की सामान्य शर्तों ["जी. सी. सी".] के खंड 2.2.52 के तहत सिकंदराबाद छावनी बोर्ड के अध्यक्ष को सौंपा गया कार्य, और इस प्रकार मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 (6) (सी) के तहत कार्रवाई का कारण पहली बार 10.11.2010 पर उत्पन्न हुआ। इस तरह की अस्वीकृति तक, दावा यह माना जाना चाहिए कि यह लंबित था और इस प्रकार, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने के समय प्रतिवादी का दावा जीवित था। इसके अलावा, हालांकि उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अंतिम बिल आपत्ति के साथ प्राप्त किया गया था क्योंकि अंतिम बिल के साथ प्रस्तुत मूल्य भिन्नता बिल को अपीलार्थी द्वारा मंजूरी नहीं दी गई थी, लेकिन उन्होंने इसका सबूत देने वाला कोई दस्तावेज पेश नहीं किया। इसके अलावा, उन्होंने तथ्यों के आधार पर, **जियो मिलर एंड कंपनी (पी) लिमिटेड बनाम राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड, (2020)14 एस.सी.सी. 643** और **विद्या द्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, (2021)2 एस.सी.सी. 1** में इस न्यायालय के फैसलों में अंतर करने की मांग की। हमारे समक्ष अपीलों से यह तर्क देते हुए कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच जी.सी.सी. ने विशेष रूप से एक मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रक्रिया का प्रावधान किया है और अपीलार्थी प्रतिवादी के अनुरोध पर देरी करने और बैठने के लिए जिम्मेदार था। इस प्रकार, उन्होंने उच्च न्यायालय के विवादित फैसले का समर्थन किया जिसके द्वारा धारा 11 के आवेदनों को अनुमति दी गई थी।

15. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील को सुनने के बाद, सबसे पहले **जियो मिलर एण्ड कंपनी(प्रा.)लिमिटेड बनाम राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड, (2020)14 एस.सी.सी. 643**, में इस न्यायालय के हाल के फैसले का उल्लेख करना आवश्यक है, जो पहले के सभी प्रासंगिक अंशों से अंश निकालता है, और फिर यह बताता है कि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने का समय कब शुरू होता है। न्यायालय ने सुसंगत वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करने के बाद कहाः

> "15. *दामोदर दास में [उड़ीसा राज्य बनाम दामोदर दास,(1996)2 एस.सी.सी.216],* इस न्यायालय ने *रसेल मध्यस्थता पर एंथनी वाल्टन द्वारा (19 वीं संस्करण) पृ.4–5* पर और दो न्यायाधीशों की पीठ का एक पूर्व निर्णय– *पंचु गोपाल बोस बनाम पोर्ट ऑफ कलकत्ता [पंचू गोपाल बोस*

बनाम पोर्ट ऑफ कलकत्ता, (1993)4 एस.सी.सी. 338] में भरोया किया, कि 1940 के अधिनियम की धारा 8 और 20 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन के लिए परिसीमा की अवधि उस तारीख से शुरू होती है जिस दिन "मध्यस्थता का कारण" शुरू होता है। उपार्जित अर्थात् उस तारीख से जब दावेदार ने पहली बार संबंधित विवाद पर कार्रवाई का अधिकार या मध्यस्थता की आवश्यकता का अधिकार प्राप्त किया था।

XXX XXX XXX

"21. उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू करते हुए, हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि मध्यस्थता आवेदन क्रमांक 25/2003 और 27/2003 के संबंध में अपीलार्थी की कार्रवाई का कारण, दिनांक 7.10.1979 और 4.4.1980 कार्य आदेशों से संबंधित 8.2.1983 पर उत्पन्न हुआ, जो तब होता है जब प्रतिवादी को सौंपा गया अंतिम बिल देय हो जाता है। केवल पत्र लिखने के माध्यम से अपीलार्थी का पत्राचार/अनुस्मारक इस तिथि के बाद प्रतिवादी को देने से परिसीमा का समय नहीं बढ़ेगा। अतः अधिकतम अवधि जिसके दौरान यह न्यायालय अपीलार्थी के आवेदन की अनुमति दे सकता था एक मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने की तारीख अर्थात 8.2.1986 से 3 साल है। इसी तरह, कार्य आदेश दिनांक 3–5–1985 से संबंधित मध्यस्थता आवेदन क्रमांक 28/2003 के संबंध में, प्रतिवादी ने कहा है कि अंतिम बिल सौंपा गया था और 10.8.1989 पर देय हो गया था। अपीलार्थी द्वारा इस पर विवाद नहीं किया गया है। इसलिए परिसीमा अवधि 10.8.1992 पर समाप्त हो गई। चूंकि अपीलार्थी ने 2002 में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए नोटिस दिया था और 2003 के अंत तक ही अदालत के समक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध किया था, इसलिए उसका दावा स्पष्ट रूप से सीमाबाधित है।

xxx xxx xxx

23. अन्य निर्णयों की ओर रुख करें तो यह सच है कि इंदर सिंह रेखी [इंदर सिंह रेखी बनाम डी.डी.ए.,(1988)2 एस.सी.सी. 338], के मामले में इस न्यायालय ने कहा कि एक मध्यस्थ के नियुक्ति के लिए विवाद का अस्तित्व आवश्यक है। विवाद तब उत्पन्न होता है जब एक पक्ष द्वारा दावा किया जाता है और दूसरे द्वारा अस्वीकार किया जाता है। "विवाद" शब्द में एक सकारात्मक तत्व शामिल है और भुगतान करने में केवल निष्क्रियता से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि विवाद मौजूद है। उस मामले में, चूंकि प्रतिवादी आवेदक के देय बिलों को अंतिम रूप देने में विफल रहा, इसलिए इस न्यायालय ने कहा कि कार्रवाई का कारण उस तारीख से नहीं माना जाएगा जिस दिन भुगतान देय हुआ था, बल्कि उस तारीख को माना जाएगा जब बिलों को अंतिम रूप देने का अनुरोध करते हुए प्रतिवादी

को आवेदक पहली बार भुगतान करने लिखा। हालांकि, अदालत ने यह भी स्पष्ट रूप से कहा कि "कोई भी पक्ष अनुस्मारक लिखकर या अनुस्मारक भेजकर कार्रवाई के कारण की गणना को स्थगित नहीं कर सकता है।"

24. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को विवादित नहीं किया है कि अपीलार्थी ने स्वयं 8.2.1983 पर प्रतिवादी को अंतिम बिल सौंप दिया था। इसलिए, *इंदर सिंह रेखी [इंदर सिंह रेखी बनाम डी. डी. ए., (1988) 2 एस.सी.सी. 338]* लागू नहीं होगा, क्योंकि उस मामले में, प्रतिवादी के बिलों को अंतिम रूप देने में विफलता के कारण आवेदक के दावे में देरी हुई थी। इसलिए वर्तमान मामले में आवेदन करने का अधिकार उस तारीख से अर्जित किया गया है जिसे अंतिम बिल उठाया गया था (देखें *भारत संघ बनाम मोमीन कंस्ट्रक्शन कं. [भारत संघ बनाम मोमीन कंस्ट्रक्शन कंपनी, (1997)9 एस.सी.सी. 97]*)।

XXX XXX XXX

29. इसके अलावा, एक वाणिज्यिक विवाद में, जबकि केवल भुगतान करने में विफलता कार्रवाई के कारण को जन्म नहीं दे सकती है, एक बार जब आवेदक अपने दावे पर जोर दे देता है और प्रतिवादी इस तरह के दावे का जवाब देने में विफल रहता है, तो ऐसी विफलता को आवेदक के दावे के इनकार के रूप में माना जाएगा जो विवाद को जन्म देता है, और इसलिए मध्यस्थता के संदर्भ में कार्रवाई का कारण है। आवेदक का यह कहना झूठ नहीं है कि उसने विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए अनुचित रूप से लंबी अवधि तक इंतजार किया, केवल प्रतिवादी द्वारा अपने दावे को निपटाने में विफलता के कारण और क्योंकि वे इस बीच प्रतिवादी को अभ्यावेदन और अनुस्मारक लिख रहे थे।"

16. इस अदालत का हालिया फैसला में, **भारत संचार निगम लिमिटेड व अन्य बनाम मेसर्स नॉर्टेल नेटवर्क्स इंडिया प्रा. लिमिटेड,** सिविल अपील क्रमांक 843–844/2021 पर भी इस विषय पर संपूर्ण कानून पर विचार किया गया है। उक्त निर्णय का पहला पैराग्राफ इस प्रकार है:

"1. वर्तमान अपीलें हमारे लिए दो महत्वपूर्ण मुद्दे उठाती हैं। विचारः (i) मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 ("1996 अधिनियम") की धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने की परिसीमा की अवधि; और (ii) क्या न्यायालय धारा 11 के तहत संदर्भ देने से इनकार कर सकता है जहां दावे प्रत्यक्ष रूप से समय–बाधित हैं?

17. जहाँ तक पहले मुद्दे का संबंध है, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद की जांच करने के बाद, इस न्यायालय ने निर्णय दिया:

> "11. अब यह काफी हद तक तय हो गया है कि धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने की सीमा मध्यस्थता का आह्वान करने वाले नोटिस के जारी होने से 30 दिनों की अवधि के भीतर मध्यस्थ की नियुक्ति करने में विफलता पर उत्पन्न होगी। दूसरे शब्दों में, धारा 11 के तहत एक आवेदन तभी दायर किया जा सकता है जब मध्यस्थता के लिए निर्दिष्ट किए जाने वाले विशेष दावे/विवाद के संबंध में मध्यस्थता की सूचना दी जाती है [जैसा कि अधिनियम की धारा 21 द्वारा विचार किया गया है] और नियुक्ति करने में विफलता होती है।
>
> 12. मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग करने वाली याचिका दायर करने की सीमा अवधि को अंतर्निहित वाणिज्यिक अनुबंध में किए गए वास्तविक दावों पर लागू सीमा अवधि के साथ भ्रमित या मिश्रित नहीं किया जा सकता है। ऐसे दावों के लिए सीमा अवधि सीमा अधिनियम, 1963 के विभिन्न अनुच्छेदों के तहत निर्धारित है।अंतर्निहित मूल विवादों पर निर्णय लेने की सीमा आवश्यक रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल करने से अलग है। इस स्थिति को मध्यस्थता अधिनियम 1940 की धारा 20 के तहत भी मान्यता दी गई थी। **सी. बुधराजा बनाम अध्यक्ष, उड़ीसा खनन निगम लिमिटेड [(2008)2 एस.सी.सी. 444]** में इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है। जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1940 के अधिनियम की धारा 37(3) में यह प्रावधान है कि सीमा अधिनियम के उद्देश्य के लिए, एक मध्यस्थता तब शुरू हुई मानी जाती है जब मध्यस्थता समझौते का एक पक्षकार दूसरे पक्ष पर कार्य करता है, एक सूचना जिसमें मध्यस्थ नियुक्ति की आवश्यकता होती है। इस निर्णय का अनुच्छेद 26 इस प्रकार है:
>
> "26. अधिनियम की धारा 37(3) में प्रावधान है कि सीमा अधिनियम के उद्देश्य के लिए, एक मध्यस्थता शुरू की गई मानी जाती है जब मध्यस्थता समझौते का एक पक्ष दूसरे पक्षकार पर कार्य करता है। इसके लिए पक्षकार, एक नोटिस जिसमें एक मध्यस्थ की नियुक्ति की आवश्यकता होती है। इस तरह का नोटिस 4.6.1980 को दिया गया है, इसे देखना होगा क्या दावे उस तारीख को समय पर थे। यदि दावे 4.6.1980 पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, यह इस प्रकार है कि दावों को होना था मध्यस्थ द्वारा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि दावे सीमा से वर्जित थे। उक्त अवधि का अधिनियम की धारा 8 (2) के तहत याचिका दायर करने की परिसीमा अवधि से कोई लेना–देना नहीं है। यहाँ तक कि धारा 8 (2) के तहत एक याचिका का संबंध है, कार्रवाई का कारण मध्यस्थता का आह्वान करना यह तब उत्पन्न होगा जब दूसरा पक्ष नोटिस का पालन करने में विफल रहता है। इसलिए,

मध्यस्थ की नियुक्ति की मांग करने वाली धारा 8(2) के तहत याचिका दायर करने की सीमा अवधि को दावा करने की सीमा अवधि के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय के फैसले में, मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम डीडीए [(1988) 2 एससीसी 338], पंचू गोपाल बोस बनाम बोर्ड ऑफ ट्रस्टीक फार पोर्ट ऑफ कलकत्ता [(1993)4 एससीसी 338] और उत्कल कमर्शियल कॉरपोरेशन बनाम सेंट्रल कोल फील्ड्स लिमिटेड [(1999) 2 एससीसी 571], भी इस स्थिति को स्पष्ट करता है।"

18. जहां तक दूसरे मुद्दे का संबंध है, यह न्यायालय मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 ["2015 संशोधन"] 2015 के संशोधन द्वारा धारा 11(6ए) की शुरूआत द्वारा किए गए बदलाव के साथ पहले की स्थिति में चला गया, जिसमें कहा गया है:

"24. **डुरो फेलगुएरा एसए बनाम गंगावरम पोर्ट लिमिटेड [(2017) 9 एससीसी 729]** के मामले में उप–धारा (6ए) विचार किया गया, जिसमें इस न्यायालय ने माना कि विधायी नीति नियुक्ति चरण में न्यायिक हस्तक्षेप को कम करने की थी। धारा 11 के तहत एक आवेदन में, न्यायालय को संदर्भ देने से पहले केवल मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व पर गौर करना चाहिए। 2015 के संशोधनों के बाद, अदालतों को केवल यह जांचना होगा कि क्या कोई मध्यस्थता समझौता अस्तित्व में है – न इससे अधिक, न इससे कम।

"**48**. 2015 के संशोधन द्वारा जोड़ी गई धारा 11(6–ए) इस प्रकार है–

"11.(6–ए) उच्चतम न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय, उप–धारा (4) या उप–धारा (5) या उप–धारा (6) के तहत किसी भी आवेदन पर विचार करते समय, किसी भी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के बावजूद, मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व की जांच तक ही सीमित रहें।"

(जोर दिया गया)

धारा 11(6–ए) को पढ़ने से, विधायिका का इरादा बिल्कुल स्पष्ट है यानी अदालत को केवल एक पहलू पर ध्यान देना चाहिए– एक मध्यस्थता समझौते का अस्तित्व। यह निर्णय लेने के लिए कारक क्या हैं कि कोई मध्यस्थता समझौता है या नहीं, यह अगला प्रश्न है। इसका समाधान सरल है– यह देखने की जरूरत है कि क्या समझौते में कोई खंड शामिल है जो समझौते के पक्षों के बीच उत्पन्न हुए विवादों से संबंधित मध्यस्थता का प्रावधान करता है।

.....

59. एस.बी.पी. और कं. [एस.बी.पी. और कं. बनाम पटेल इंजी. लिमिटेड, (2005)8 एस.सी.सी.618] और बोघारा पॉलीफैब [नेशनल इंश्यारेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोघारा पॉलीफैब (प्रा.) लिमिटेड, (2009) 1 एससीसी 267:(2009)1 एस.सी.सी.(सिवि.) 117] में लिए गए निर्णयों को देखते हुए अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत शक्ति का दायरा काफी व्यापक था। यह स्थिति तब तक जारी रही जब तक कि 2015 संशोधन नहीं लाया गया। यह स्थिति 2015 में संशोधन लाए जाने तक जारी रही। संशोधन के बाद, अदालतों को बस यह देखना होगा कि क्या मध्यस्थता समझौता मौजूद है – न इससे ज्यादा, न इससे कम। विधायी नीति और उद्देश्य अनिवार्य रूप से मध्यस्थ की नियुक्ति के चरण में न्यायालय के हस्तक्षेप को कम करना है और धारा 11(6–ए) में शामिल इस इरादे का सम्मान किया जाना चाहिए।'

25. मायावती ट्रेडिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम प्रद्युत देव बर्मन [(2019)8 एस.सी.सी.714], तीन–न्यायाधीशों की पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 11(6ए) के तहत न्यायालय की शक्ति के दायरे को संकीर्ण अर्थों में देखा जाना चाहिए। पैराग्राफ 10 में यह राय दी गई थी, जो इस प्रकार है–

"10. इस स्थिति में, यह स्पष्ट है कि 2015 के संशोधन से पहले का कानून जो इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसमें यह शामिल होगा कि क्या समझौता और संतुष्टि हुई है, अब विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है। यह स्थिति होने के कारण, तर्क से सहमत होना मुश्किल है उपरोक्त निर्णय में निहित [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस] कं. लिमिटेड बनाम इंटीक आर्ट एक्पोर्ट (प्रा.) लिमिटेड, (2019)5 एस.सी.सी.362: (2019)2 एस.सी.सी.(सी.आई.वी.)785], धारा 11(6–ए) के रूप में मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व की जांच तक सीमित है और इसे संकीर्ण अर्थों में समझा जाना चाहिए जैसा कि निर्णय – ड्यूरो फेलगुएरा, एसए [ड्यूरो फेलगुएरा एसए गंगावरम पोर्ट लिमिटेड, (2017) 9 एस.सी.सी.729, में निर्धारित किया गया है।

26. उत्तराखंड पूर्व सैनिक कल्याण निगम बनाम नॉर्दर्न कोल फील्ड लिमिटेड [(2020)2 एस.सी.सी.455] में इस न्यायालय ने अपनी 246वीं रिपोर्ट में विधि आयोग की सिफारिशों पर ध्यान दिया, जिसका प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार हैः

"7.6. विधि आयोग ने 246वीं रिपोर्ट में [संशोधन] मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की रिपोर्ट संख्या 246, भारतीय विधि आयोग (अगस्त 2014), पृ.20.] अनुशंसित किया कि–

"33 ..... आयोग ने मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 और 11 में संशोधन की सिफारिश की है। न्यायिक हस्तक्षेप का दायरा केवल उन स्थितियों तक सीमित है जहां

अदालत/न्यायिक प्राधिकरण को पता चलता है कि मध्यस्थता समझौता मौजूद नहीं है या शून्य है। जहां तक हस्तक्षेप की प्रकृति का सवाल है, यह अनुशंसा की जाती है कि यदि अदालत/न्यायिक प्राधिकरण मध्यस्थता समझौते को चुनौती देने वाले तर्क के खिलाफ प्रथम दृष्टया संतुष्ट है, तो वह मध्यस्थ नियुक्त करेगा और/या पार्टियों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करेगा, जैसा भी मामला हो। संशोधन में परिकल्पना की गई है कि न्यायिक प्राधिकरण पार्टियों को मध्यस्थता के लिए नहीं भेजेगा, केवल अगर उसे पता चलता है कि मध्यस्थता समझौता मौजूद नहीं है या यह शून्य है। यदि न्यायिक प्राधिकरण की राय है कि प्रथम दृष्टया मध्यस्थता समझौता मौजूद है, तो वह विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करेगा, और मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व को अंततः मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित करने के लिए छोड़ देगा।

संशोधित धारा 11(6ए) में निहित विधायी अधिदेश को देखते हुए, न्यायालय को अब केवल मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व की जांच करने की आवश्यकता है। अन्य सभी प्रारंभिक या सीमा मुद्दों को धारा 16 के तहत मध्यस्थ द्वारा तय करने के लिए छोड़ दिया जाता है, जो कॉम्पेटेंज़–कॉम्प्टेन्ज़ सिद्धांत को स्थापित करता है। कॉम्पेटेंज़–कोम्प्टेन्ज़ के सिद्धांत का तात्पर्य है कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण सशक्त है, और सभी न्यायिक मुद्दों के निर्धारण सहित अपने स्वयं के क्षेत्राधिकार पर शासन करने की क्षमता रखता है। इसका उद्देश्य पूर्व–संदर्भ चरण में न्यायिक हस्तक्षेप को कम करना था, ताकि पार्टियों द्वारा प्रारंभिक आपत्ति उठाए जाने पर मध्यस्थता प्रक्रिया को विफल न किया जाए।"

(मूल में जोर)

19. इस न्यायालय ने यह माना कि सीमा कोई अधिकार क्षेत्र का मुद्दा नहीं है, बल्कि एक स्वीकार्यता का मुद्दा है। इसके बाद इसने **विद्या ड्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, (2021) 2 एससीसी 1** में इस न्यायालय के हालिया फैसले का हवाला दिया और इस प्रकार कहा गया:

"36. **विद्या ड्रोलिया बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन [(2021) 2 एससीसी 1]** में तीन–न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए हालिया फैसले में, धारा 8 और 11 के तहत शक्ति के दायरे पर, यह माना गया है कि न्यायालय को प्राथमिक कार्य पहली समीक्षा "स्पष्ट रूप से गैर–मौजूद और अमान्य मध्यस्थता समझौतों, या गैर–मध्यस्थता योग्य विवादों" को खत्म करने के लिए करना चाहिए। प्रथम दृष्टया संदर्भ चरण में समीक्षा गतिरोध को दूर करने के लिए है, जहां बर्खास्तगी खुले चेहरे और अस्पष्ट है, और जब तथ्यों और कानून पर, मुकदमेबाजी पहले चरण में रुकनी चाहिए। केवल जब न्यायालय आश्वस्त हो कि कोई वैध मध्यस्थता समझौता मौजूद नहीं है, या विषय वस्तु मध्यस्थता योग्य नहीं है, तो उस संदर्भ को अस्वीकार किया जा सकता है।

पैराग्राफ 144 में, न्यायालय ने कहा कि **मायावती ट्रेडिंग** के फैसले में यह सही माना गया है कि **पटेल इंजीनियरिंग** के फैसले को विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है।

पैरा 144 इस प्रकार हैः

"144. जैसा कि पहले देखा गया, पटेल इंजी. लिमिटेड स्पष्ट करता है और मानता है कि धारा 8 और 11 प्रकृति में पूरक हैं क्योंकि दोनों मध्यस्थता के संदर्भ से संबंधित हैं। धारा 8 तब लागू होती है जब न्यायिक कार्यवाही लंबित हो और न्यायिक कार्यवाही पर रोक लगाने और मध्यस्थता के संदर्भ के लिए एक आवेदन दायर किया गया हो। 2016 के अधिनियम 3 के तहत धारा 8 में संशोधन को छोड़ा नहीं गया है। धारा 11 उस स्थिति को कवर करती है जहां पक्षकार मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाते हैं। हमारी राय में, मायावती ट्रेडिंग (प्रा.) लिमिटेड सही मानती है कि पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड को विधायी रूप से खारिज कर दिया गया है और इसलिए यह मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 की उप–धारा (6–ए) के हटने के बाद भी लागू नहीं होगा। मायावती ट्रेडिंग (प्रा.) लिमिटेड ने उप–धारा (6–ए) के संदर्भ में धारा 11 में संशोधन के उद्देश्य और उद्देश्यों और इतिहास को विस्तार से बताया है ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि धारा, जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित किया गया था, मध्यस्थता के कानून का अनसिट्रल मॉडल जिस पर मध्यस्थता अधिनियम का मसौदा तैयार किया गया और अधिनियमित किया गया, अनुच्छेद 11 के समान थी।

(जोर दिया गया)

न्यायिक मंच के रूप में धारा 11 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, अदालत प्रथम दृष्टया परीक्षण का उपयोग कर जांच कर सकती है और पूर्व दृष्टया गणहीन, तुच्छ और बेईमान मुकदमे को खारिज कर सकती है। न्यायालयों का सीमित क्षेत्राधिकार संदर्भित चरण में शीघ्र और कुशल निपटारा सुनिश्चित करेगा। संदर्भित चरण में, न्यायालय "केवल" तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब यह "प्रकट" हो कि दावे पूर्व दृष्टया कालबाधित और मृत हैं, या कोई मौजूदा विवाद नहीं है।

फैसले का पैराग्राफ 148 इस प्रकार है:

"148. मध्यस्थता अधिनियम की धारा 43(1) में कहा गया है कि सीमा अधिनियम, 1963 मध्यस्थता पर उसी तरह लागू होगा जैसे यह अदालती कार्यवाही पर लागू होता है। उप–धारा (2) में कहा गया है कि मध्यस्थता अधिनियम और सीमा अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, मध्यस्थता को धारा 21 में निर्दिष्ट तिथि पर शुरू हुआ माना जाएगा। परिसीमन कानून प्रक्रियात्मक है और आम तौर पर

विवाद, तथ्यात्मक होने के कारण, मध्यस्थ को पाए गए तथ्यों और लागू कानून के आधार पर निर्णय लेना होता है। रेफरल चरण में अदालत केवल तभी हस्तक्षेप कर सकती है जब यह स्पष्ट हो कि दावे प्रथम दृष्टया कालातीत और मृत हैं, या कोई मौजूदा विवाद नहीं है। अन्य सभी मामलों को गुण–दोष के आधार पर निर्णय के लिए मध्यस्थ न्यायाधिकरण को भेजा जाना चाहिए। विवादित "नो–क्लेम सर्टिफिकेट" या नवप्रवर्तन और "समझौते और संतुष्टि" की दलील पर बचाव के मामले में भी यही स्थिति होगी। जैसा कि *प्रीमियम नाफ्टा प्रोडक्ट्स लिमिटेड* [फ़िली शिपिंग कंपनी लिमिटेड बनाम प्रीमियम नाफ्टा प्रोडक्ट्स लिमिटेड, 2007 यूकेएचएल 40: 2007 बस एलआर 1719 (एचएल)] में देखा गया है, यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि लेनदेन दर्ज करते समय वाणिज्यिक पुरुष एक–दूसरे के जानबूझकर एक ऐसी प्रणाली बनाई जाएगी जिसके लिए आवश्यक होगा कि अदालत पहले यह तय करे कि क्या अनुबंध को सुधारा जाना चाहिए या टाला जाना चाहिए या रद्द कर दिया जाना चाहिए, जैसा भी मामला हो, और फिर यदि अनुबंध को वैध माना जाता है, तो उसे मध्यस्थ को इसे हल करने की आवश्यकता होगी जो मुद्दे उठे हैं।"

पैराग्राफ 154.4 में यह निष्कर्ष निकाला गया है किः

"154.4. शायद ही कभी एक विलंबकर्ता के रूप में अदालत धारा 8 या 11 के स्तर में हस्तक्षेप कर सकती है जब यह स्पष्ट रूप से और पूर्व दृष्टया निश्चित हो कि मध्यस्थता समझौता अस्तित्वहीन है, अमान्य है या विवाद गैर–मध्यस्थता योग्य हैं, हालांकि गैर–मध्यस्थता की प्रकृति और पहलू होंगे, कुछ हद तक, न्यायिक जांच के स्तर और प्रकृति को निर्धारित करते हैं। प्रतिबंधित और सीमित समीक्षा का उद्देश्य पक्षकारों को मध्यस्थता करने के लिए मजबूर होने से रोकना और उनकी रक्षा करना है जब मामला स्पष्ट रूप से "गैर–मध्यस्थता योग्य" हो और गतिरोध को खत्म करना हो। डिफ़ॉल्ट रूप से अदालत उस मामले को संदर्भित करेगी जब गैर–मध्यस्थता से संबंधित विवाद स्पष्ट रूप से बहस योग्य हों; जब संक्षिप्त कार्यवाही में विचार अपर्याप्त और अनिर्णायक होगा; जब तथ्यों पर विवाद किया जाता है; जब मध्यस्थता का विरोध करने वाला पक्ष देरी की रणनीति अपनाता है या मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन को बाधित करता है। यह अदालत के लिए लघु–परीक्षण या विस्तृत समीक्षा में प्रवेश करने का मंच नहीं है ताकि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र को हड़प लिया जा सके, बल्कि एक वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र के रूप में मध्यस्थता की अखंडता और प्रभावकारिता की पुष्टि और कायम रखी जा सके।

(जोर दिया गया)

पैराग्राफ 244.4 में यह निष्कर्ष निकाला गया था किः

"244.4. यदि मध्यस्थता समझौते की वैधता प्रथम दृष्टया आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती है, तो अदालत को मामले को संदर्भित करना चाहिए। जैसा कि ऊपर बताया गया है अर्थात **"जब संदेह हो, तो अवश्य देखें"**।

37. विद्या द्रोलिया मामले में फैसले का नतीजा **ड्यूरो फेलगुएरा** और **मायावती ट्रेडिंग** में सामने आई कानून की स्थिति की पुष्टि है, जो इस क्षेत्र पर कायम हैं। यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि **विद्या द्रोलिया** ने शक्ति के दायरे पर एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग (सुप्रा) मामले में पूर्व–संशोधन स्थिति को पुनर्जीवित नहीं किया है(ऊपर)।

यह केवल मामलों की बहुत ही सीमित श्रेणी में है, जहां संदेह का कोई निशान भी नहीं है कि दावा पूर्व–दृष्टया कालातीत है, या कि विवाद गैर–मध्यस्थता योग्य है, कि अदालत रिफरेंस देने से इनकार कर सकती है। हालाँकि, अगर थोड़ा सा भी संदेह है, तो नियम यह है कि विवादों को मध्यस्थता के लिए भेजा जाए, अन्यथा यह उस मामले का अतिक्रमण करेगा जो मूल रूप से न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाना है।

(मूल में जोर)

20. इस मामले के तथ्यों पर उपरोक्त निर्णयों को लागू करने पर, जहां तक मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदनों पर परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 की प्रयोज्यता का सवाल है, यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में पत्र दिनांक 07.11.2006 द्वारा मध्यस्थता की मांग की गई थी। यह मांग एक पत्र दिनांक 13.01.2007 द्वारा दोहराई गई थी, जिस पत्र में स्वयं अपीलकर्ता को सूचित किया गया था कि मध्यस्थ की नियुक्ति 30 दिनों के भीतर करनी होगी। हालिया, इसलिए, इस मामले के तथ्यों पर, समय 12.02.2007 से चलना शुरू हुआ। अपीलकर्ता का संक्षिप्त पत्र दिनांक 23.01.2007, जिसमें कहा गया था कि मामला विचाराधीन था, 30 दिन की अवधि के भीतर था। दिनांक 12.02.2007 को और उसके बाद से, जब कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया गया था, मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए कार्रवाई का कारण प्रतिवादी को दिया गया और उस दिन से समय चलना शुरू हुआ। जाहिर है, एक बार समय चलना शुरू हो गया है, तो अपीलकर्ता द्वारा अपने पत्र दिनांक 10.11.2010 द्वारा किसी भी अंतिम अस्वीकृति से सीमा अवधि की कोई नई शुरुआत नहीं होगी, जो कि परिसीमा अधिनियम की धारा 9 के आदेश के बाद पहले ही चलना शुरू हो चुकी है। यह मामला होने पर, उच्च न्यायालय यह कहने में स्पष्ट रूप से गलती कर रहा था कि चूंकि मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन 06.11.2013 को दायर किए गए थे, वे दिनांक 10.11.2020 से शुरू होने वाली तीन साल की सीमा अवधि के भीतर थे। इस आधार पर, मध्यस्थता अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन, निराशाजनक रूप से समय–बाधित होने के कारण, उच्च न्यायालय द्वारा कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता था।

21. अन्यथा भी, प्रतिवादी द्वारा किए गए दावे को भी पूर्व दृष्ट्या समय पर रोक लगा दी गई थी। यह निर्विवाद है कि अंतिम भुगतान प्रतिवादी द्वारा मार्च 2003 के अंत तक प्राप्त हुए थे। इसके अलावा, यह मानते हुए कि कीमत में भिन्नता के कारण मांग की जा सकती थी, ऐसी मांग 08.09.2003 पर की गई थी। इसके बाद प्रतिवादी द्वारा बार–बार पत्र लिखे गए, जो दिनांक 30.01.2010 के कानूनी नोटिस में समाप्त हुए। दिनांक 16.02.2010 जवाब नोटिस के माध्यम से, यह स्पष्ट किया गया था कि ऐसी मांगों को अस्वीकार कर दिया गया था। यहां तक कि गुण–दोष पर परिसीमा के लिए प्रारंभिक बिंदु के रूप में 16.02.2010 को लेते हुए, फरवरी 2013 तक तीन साल की अवधि बीत जाने के बाद, गुण–दोष पर किया गया दावा भी निराशाजनक रूप से समय–बाधित है।

22. इन सभी कारणों से, अपील की स्वीकृति दी जाती है और उच्च न्यायालय के दिनांक 20.08.2019 के निर्णय को रद्द किया जाता है।

अपीलें स्वीकृत की गई

अंकित ज्ञान

हिन्दी रुपांतरणकर्ता

(रमाशंकर प्रसाद)

जिला एवं सत्र न्यायाधीश

बिलासपुर (छ०ग०)